लीला सुधा सिन्धु
पद्य रामायण
: रचयिता :
श्रीमद् स्वामी रामहर्षणदास जी महाराज

॥ श्री सीतारामाभ्याँ नमः ॥

लीला सुधा सिन्धु

(पद्य रामायण)

✽ रचयिता ✽

श्रीमद् स्वामी रामहर्षण दासजी महाराज

वसंत पंचमी

(विक्रम सं २०६३)

लीला सुधा सिन्धु (पद्य रामायण)

रचयिता :

श्रीमद् स्वामी रामहर्षण दासजी महाराज

प्रकाशक :
प्रकाशन विभाग
श्री रामहर्षण कुंज,
परिक्रमा मार्ग,
अयोध्या (उत्तर प्रदेश)
दूरभाष : (०५२७८) २३२३१७

तृतीय आवृत्ति : ११००
वसंत पंचमी
(विक्रम सं २०६३)

मूल्य : रु. १५० मात्र

टाइप सेटिंग एवं डिज़ाइन :
डी टी पी सेन्टर, सरस्वती सदनम कॉम्पलेक्स,
धरमपेठ, नागपुर - ४४० ०१०
दूरभाष : (०७१२) २५६०९८९
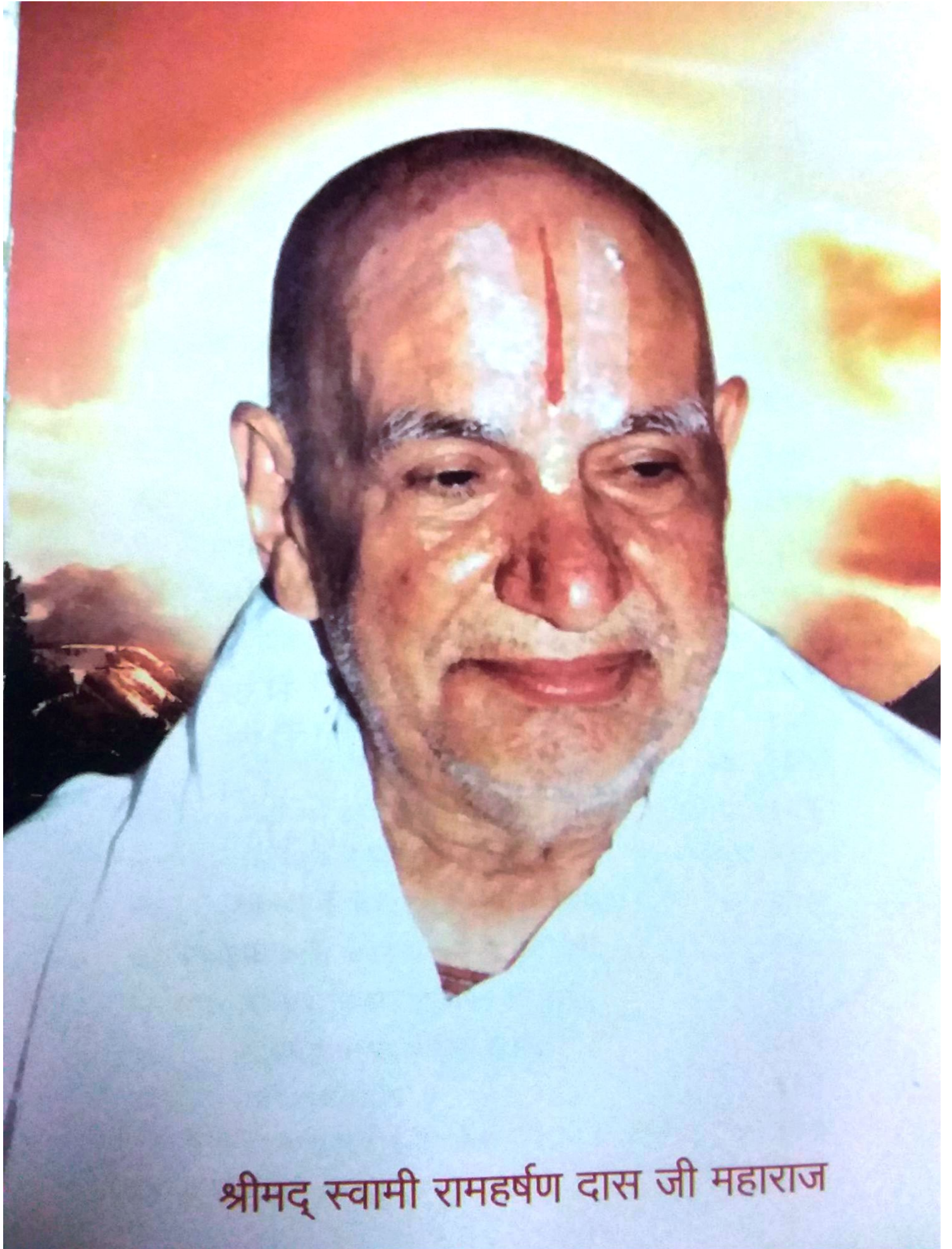
श्रीमद् स्वामी रामहर्षण दास जी महाराज

ताहि राज मद होइ न सपनेहु, विधि हरि हर पद पाइ प्रमान।
क्षीर सिन्धु किमि काँजी सीकर, विनशै भला लेहु जिय जान।
हर्षण त्रिकरण नेह हमहिं पै, मोहिं बिन तिनहिं न भावै आन।

(१३६६)

इत श्री भरत कुआँरे, बाँहू निज केवट के धारे।
चले मिलन प्रभु आश्रम अतुरे, नवनि नेह वपु वारे।
विरह वेग मग डगमग डोलत, दृग ते बहत पनारे।
निरखि राम-पद अंक अवनि पै, करि प्रणाम हिय हारे।
रज सिर धरि दोउ आँखिन आँजी, बन्धु मिलन सुख पा रे।
प्रेम विवस पथ भूलत सुर लखि, कहि मग सुमनहिं झारे।
केवट चढ़ि ऊँचे कह भरतहिं, लखु कुटीर प्रभु प्यारे।
पाकर जम्बु रसाल तमालहिं, बीच बड़ो वट भा रे।
सुंदर पर्ण कुटी तहँ छाई, हर्ष बसैं त्रय तारे।

(१३६७)

उर उमगत पावन थल लखि लाल।
भरत प्रेमवस होहिं विभोरा, तैसहिं रिपुहन नृपति किशोरा,
कबहुँ ठुठक कहुँ द्रुत की चलि चाल।
जब समुझत रघुवीर स्वभावा, तब पथ परत उताइल पावा,
केकइ करतब सुधि ते गति टाल।
सोचत हृदय कबहुँ भ्रम भावन, रामलखन सिय सुनि मम आवन,
उठि न जाँय ठावहिं तजि सुख शाल।

प्रभु प्राप्ती प्रतिबन्धक पापा, मानत अपुन देन परितापा,
प्रविशे आश्रम यहि विधि हिय ख्याल।
वेदी बिच सिय सह रघुराजू, चहुँ दिशि बैठी संत समाजू,
चल सत संग सुखद शुचि तेहिं काल।
धनुष धरे श्री लक्ष्मण लाला, सेवामाँहि खड़े तजि जाला,
देखि भरत तप वेषहिं उर घाल।
त्राहि त्राहि कहि कीन्ह प्रणामा, परे लकुटि इव सो महि धामा,
लखन लखे सुनि वचननि वर बाल।

(१३६८)

प्रभु कैंकर्य निपुण सौमित्र।
राम चरण पंकज शिर नाई, बोले वचन पवित्र।
भरत दण्ड इव प्रणमि रहे हैं, पाहि कहत दृग पाथ।
कहुँ निषंग धनु तीर तजे द्रुत, कहुँ पट सुनि रघुनाथ।
हरवर उतरि वेदि ते दृग भरि, पुलकावली शरीर।
महि उठाय भरतहिं उर लाये, बोरे नयनन नीर।
राम भरत की मिलनि अनूपम, साधक सिद्धहु देख।
हर्ष मगन प्रेमाब्धि भूलि सब, जड़ चेतन जग लेख।

(१३६९)

कामद गिरि के लता पतान।
परम प्रकाशित अजड़ सरिस सब, भाषत निरुपम नेह निधान।

प्रेम सिन्धुकी सीकर उड़ि उड़ि, भिगई सबकहुँ सहित पषान।
चेतन की तहँ कथा कहै को, सुरमुनि सबकोउ अचरज मान।
भरत नेह प्रभु फिरहि जो वनते, होइहि केहि विधि महि कल्याण।
असुर मारि कत सुरहि प्रथपिहै, सोचत देव सोच उर आन।
तबहि बृहस्पति तिन्ह समुझाये, प्रेम प्रतीति भजौ भगवान।
भरत-राम प्रकृतिस्थ भये पुनि, निरखि परस्पर सुख में सान।
करत प्रणाम उठाय लिये हिय, रिपुहन कह रघुवीर सुजान।
प्रणमत लखनहि लखि तहँ भरतहु, हर्ष मिले उर लै अँसुआन।

(१३७०)

सिय पद कमल समीप परे।
भरत विकल तन कंप अश्रु दृग, हृदय गलानि गरे।
वन चारिणि को वेष सुमिरि मन, तेहिं दुख जरनि जरे।
जोहि जनकजा भरत शीश में, निज कर कंज धरे।
शोक करहु जनि प्रभु के प्यारे, बोली अमिय भरे।
निर्मल तिहरी भक्ति भावना, पियको वशहिं करे।
सुनत भरत सब सोच विहाये, लखि कृप कोर खरे।
हर्षण अभय भये मन माहीं, अपडर डर न डरे।

(१३७१)

तबहिं निषाद प्रणमि कर जोरे।
कहेउ नाथ! गुरु-सचिव मातु सह, पुर समाज दुख बोरे।

सहि न सके तव विरह वह्नि कहँ, आये अवध को छोरे।
सुनत राम राखे रिपुहनहीं, सिय समीप तेहिं ठौरे।
चले मिलन लै लखनहिं द्रुतही, गुह भरतहिं संग हो रे।
रघुवर आवत तपसी वेषहिं, लखि नर नारि विभोरे।
हर्ष विषाद भरे नव नेहनि, विरह ताप झक झोरे।
हर्षण गुरुहिं देखि दोउ भाई, धाय धरे पद कोरे।

(१२७२)

मुनिके पाँयन भान भुलाई।
सानुज परे राम रघुनंदन, नेह नयन पुलकाई।
गुरु उठाय उर माहिं लगाये, प्रेम वारि नहवाई।
आशिष प्यार देइ दोउ भाइन, जियकी जरनि बुताई।
आतुर देखि सबहिं कहँ रघुवर, छन महँ मिले त्वराई।
व्यापक विश्वरूप योगिशहिं, यह न अधिक प्रभुताई।
प्रथम भेंटि केकइ समुझाये, कर्मगती को गायी।
गुरु तिय वन्दि सुमित्रहिं मिलि के, मिल जननिहिं सुखदाई।
शीश सूंघि सबही दिय आशिष, करूणा वरणि न जाई।
हर्षण हृदय हहरि कौशिल्या, देखि वेष अकुलाई।

(१३७३)

हौं तो अतिहिं अभागिनि राघौ।
वन निकारि तुम कहँ जग जीवौं, तन को स्वारथ साधौं।
जननिहिं बहु समुझायके रघुवर, निरखि सबहिं विनवा धौ।

चले लिवाय निजाश्रम सब कहँ, मुनि ते बिनय के माधौ।
पहुँचे आश्रम मुनिवर देखी, प्रणमी सिया अवाध्यौ।
गुरु ते आशिष पाय प्रमोदी, पुनि गुरु पत्नि ते लाध्यौ।
सिगरी सासुन पद शिर नइके, दोउ कर जोरि अराध्यौ।
हर्षण निरखि सिया सब सासू, बूड़ी दुःख अगाध्यौ।
उर अकुलाहिं वारि बह लोचन, कर्म कोल्हु कोउ नाध्यो।

(१३७४)

बैठन सबहिं कहे मुनि महतो।
सुनि शिरनाइ सबहिं तहँ बैठे, निरखि राम दृग बहतो।
जग गति अरु परमार्थ वरणि मुनि, नृपति मरण कह दहतो।
सुनत राम व्याकुल बहु विलपत, लखन सिया तस तहँ तो।
आजहिं जनु दिविधाम गये नृप, सब समाज दुख दहतो।
रोवत राम अनाथ भयो हा, सुखहु गयो पितु रहतो।
बोध रूप रघुवरहिं प्रबोधे, गुरुवर ज्ञानहिं गहतो।
निर्जल व्रत कीन्हे तेहिं दिवसहिं, सरित न्हाय चित चहतो।
जहँ तहँ वसे अवध नर नारी, भोर भये प्रभु महतो।
करि पितु क्रिया यथाविधि हर्षण, सेव गुरुहिं सुख लहतो।
जेहि जपि पावन भये पतित बहु, शुद्ध भयो सो कहतो।

(१३७५)

राम लखन सिय नयन निहारी।
भये मगन सुख सिन्धु में सिगरे, अवधपुरी नर नारी।

यहि सुलाभ को पाय गिने सब, फीक पदारथ चारी।
दरश परश बतिआव समयते, सबहीं सबहि विसारी।
हर्षण करहिं परस्पर चर्चा, प्रेम पगे सब वारी।

(१३७६)

शुद्ध भये दुइ दिवस गये हैं
करि प्रणाम मुनिवरहिं कह्यो प्रभु, सहत कष्ट सब कृशित भये हैं।
सब समेत पुरधारिय पाऊँ, सुनि वशिष्ट तिन्ह प्यार कये हैं।
कहे दर्श तिहरे दुई दिन ते, सब के जिव में जीव अये हैं।
जाब नाम सुनि सबहिं सुखिहैं, बिन प्रबोध नहि शान्ति लये हैं।
गुरु के वचन सुनत सब हर्षे, जिमि मयूर घन बोल पये हैं।
सोचत सबहिं बिना सिय रामहिं, अवध फिरव बड़ि हानि हये हैं।
हर्षण अन्न छाड़ि के बूसी, कौन ग्रहणकरि सुखहिं शये हैं।

(१३७७)

जो नहिं फिरिहैं राम सिया।
तो वन वसहिं हमहुँ तिन संगहि, लखि लखि लोचन लाभ लिया।
मंदाकिनि मज्जन त्रय कालिक, सुधा सरसि तेहिं पयहिं पिया।
कन्द मूल फल खाइ अवधि लगि, रहिहैं सुख ते हर्ष हिया।
यहि ते परे काह है उत्तम, निरखत प्रभु को राख जिया।
जरै सो सम्पति सदन सुभोगा, सुहृद मातु पितु पुत्र तिया।
प्रभु-पद सम्मुख होत सहायहिं, जो न करै सर्वस्व दिया।
अस विचार हर्षण कहँ जैहैं, कहहिं अवध नर नारि भिया।

(१३७८)

सोचत भरत बारहिं बार।
जो नहिं फिरिहैं राम लखन सिय, होइहि का करतार।
गुरु के कहे फिरहि रघुनन्दन, जननिउ बचन न टार।
राखि राय रुख चलिहैं मुनिवर, मातहुँ मोहिं का तार।
मोर अधम की बात कहै का, विधिहु बाम वरियार।
रक्षक मेरी राम पनहियाँ, तिन बिन कौन उबार।
सिय रघुवीर कृपहिं सो प्रगटी, लीन्हे सब छर भार।
जल संकोच जिमि मछली हर्षण, भरत दुखी मन मार।

(१३७९)

भली भरत की प्रीति प्रतीति।
दीन-दशा भल भाव निरखि के, सद्गुरु शिष्यन मीति।
प्रभुते कहे भरत अति दुखिया, आये शरण सभीति।
मोंहि वस किये रहनि ते अपने, लगत होय तिन जीति।
सुनतहिं राम कहे रुचि रखिहौं, कहिहैं जस हिय हीति।
राउर जेहि पै अस अनुरागैं, तेहि पै मम अति प्रीति।
जनक दूत तेहि समयहिं आये, खबरि कहे जस बीति।
सब मिथिलेश अवाई हर्षे, केकइ सकुचि कुकीति।
नृपहिं मिलन गवने दाशरथी, हर्ष समाज सहीति।

(१३८०)

सानुज रामहिं निरखि महीपति, हा कहि देह विसारी हैं।
विरह विकल लक्ष्मीनिधि व्याकुल, पीछे गिरे पछारी हैं।
सिद्धि सुनैना पुरजन परिजन, भीगे अँसुवन धारी हैं।
प्रणमि सहानुज जनकहिं भेंटे, प्रभु समाज सुख सारी हैं।
वारि विलोचन अरसि परसि के, सबकी किये सम्हारी हैं।
भूप दण्डवत किये वशिष्ठहिं, तिया तनय सहचारी हैं।
हिय लगाइ चारहु जामातन, निरखि नयन जल ढारी हैं।
युगल समाज परस्पर मिलितहु, शोकित सबहिं निहारी हैं।
चले लिवाय विनययुत रघुवर, कुटि प्रदेश अविकारी हैं।
शोक वचन काढ़त मुख हर्षण, निकसत आह अपारी है।

(१३८१)

शोक सरित सब जात बहे, नयनन नीर न थाह थहे।
आश्रम उदधि मिली दुख वहिता, संगम शोक न जात कहे।
बूड़ि गये बिन केवट सिगरे, नहिं नैया पतवार लहे।
मातु-सचिव-गुरु-जनक से ज्ञानी, विकल भये दुख सिन्धु ढहे।
रोवत हिचकत लेत उसासे, प्राण अबहि जनु कढ़न चहे।
जनक दशा कहि जाय न कैसेउ, सह परिवार न धीर अहे।
दशरथ मरण गवन वन प्रिय को, सालत उर सब भूलि रहे।
राम कृपा लहि धीरज मुनिवर, नृपहिं बुझावत हाथ गहे।
कछुक काल कछु ढाढ़स बांधे, भूप प्रेम की मूर्ति महे।

(१३८२)

मुनि निदेश लहि लोग जहाँ तहँ उतरे।
किये सबहिं मंदाकिनि मज्जन, नृपति मरण बहु शोग।
अन्न अशन नहिं उचित जनक कह, इतै चहिय जप जोग।
ऋषिहु कहे जल लिये न तेहि दिन, निमिपुर के कोउ लोग।
भोर भये नितकर्म किये सब, तेहि अवसर वनलोग।
कन्द मूल फल भरि भरि कामर, लै आये व्रत योग।
रघुकुल गुरु पठये जहँ भूपति, पाये सबहिं सो भोग।
हर्षण सोचत पुर फिरि हरिहैं, का प्रभु विरह को रोग।

(१३८३)

पीये पीये विरह रस प्यालाजी।
सिया दरशको श्री निधि आतुर, चले विकल तेहिं शालाजी।
भ्रातहिं देखि भगिनि उठि हरवर, भेंटी बनी विहालाजी।
लखत सियहिं लक्ष्मीनिधि विलपत, बन दुख करि करि ख्यालाजी।
कहत कठोर हृदय मैं लाड़िलि, प्रीति कियो जग जाला जी।
हाय पंकसम उरहु न विदरेउ, तुमहि हेरि यहि काला जी।
देखी दुखी श्री सिय समुझाई, भैया नेह निहाला जी।
भरि वात्सल्य सुबन्धु दुलारेव, कहेउ धन्य निमि बाला जी।
तुम समान तुमहीं हौ हर्षण, कीरति बढ़ी विशाला जी।

(१३८४)

श्री निधि जाइ कौशिला वन्दे।
तैसहिं प्रणमि सुमित्रा केकइ, रानिन अन्य अमन्दे।
व्याकुल वदत हाय कहँ पैहौं, दशरथ प्यार सनन्दे।
राम मातु दुलराय अंकलै, समुझावति तजु द्वन्दे।
मोर अभाग सबहिं दुख दीन्ही, विधिहु वाम स्वछन्दे।
यहि प्रकार कहि सुनि लहि प्यारहिं, जनक सुवन निमिचन्दे।
राम लखन अरु रिपुहन भरतहिं, मिले विरह फँसि फन्दे।
हर्षण करुणा रस उमड़ायो, श्याल भाम जग वन्दे।

(१३८५)

निज निज भावहिं वरणे चारौ।
जनक सुवन सुनि प्रेम विवस ह्वै, सिगरी सुधिहि विसारो।
चारिउ भ्रातन भाव समुझि उर, मन वाणी बुधि पारो।
विधि हरि हर मति तरकि सकै नहिं, तिनके हिय अनुहारो।
कहे सुने समयहिं अनुसारी, हिलि मिलि निमिको वारो।
निज थल पहुँचि नारि ते वरण्यो, चारहु भाम विचारो।
सुनत सिद्धि पतिते प्रिय बोली, धनि धनि चार कुमारौ।
हर्षण तिन सम तेई सत्यहिं, त्रिभुवन नहीं निहारो।

(१३८६)

सिद्धि कही ननदोई हमारे।
वेद तत्व चारहु सुख कन्दन, योगि रमत जहँ जा रे।

पगे परस्पर परमा प्रीति, विधि हरि हर गुण गा रे।
प्राण-प्राण इक एकन केरे, इक एकहिं सब वारे।
निज सुख त्यागि बन्धु सुख चाहत, मन बुधि ते सब पारे।
त्यागी परम विरक्त विकाशे, मुनि रहनिउ तहँ हारे।
अवध राज कन्दुक कर दोउ, राम भरत खेलवारे।
इत ते उत उत ते इत फेकहिं, पदप्रहार सुकुमारे।
हर्षण दम्पति विजय भरत की, चाहत निमि उजियारे।

(१३८७)

कौशिल्या को सुनि सावकाश री।
सिद्धि सुनैना आतुर गवनी, सिय विरहहिं उर प्रवास री।
राम मातु उठि आगे भेंटी, लै सब अन्त: निवास री।
हृदय दाह मन मलिना बैठी, कोउ कछु न कहै उदास री।
नृपति मरण प्रभु गवन विपिन को, सुधि करि विलपत हरास री।
राम मातु कह अहौं अभागिनि, वधू पुत्र वन निकास री।
जेहिते जग कहुँ क्लेश भयो बहु, अजहूँ नहिं तन विनाश री।
निज मुख तुमहिं दिखावौं हर्षण, मन महँ लाजहु न भाष री।

(१३८८)

सुनत सुनैना आह भरी।
विधि करतूति कठोर निरूपी, कही सो धीर धरी।
बीते निशा अवशि दिन होइय, पूरि प्रकाश अरी।
तिमि बड़ विपति गये सुख अइहैं, सब लहि सुखद घरी।

वन ते आइ अवध सिय रघुवर, सुख दै शोक हरी।
एक छत्र महि करिहैं राजहिं, विजय विभूति बरी।
यह सब यागवल्क कहि राखे, सत सत बात सरी।
हर्षण सहत समय को काटहिं, आगे आस करी।

(१३८९)

विधि जस राखै तैसे रहौं।
राम मातु कह बोयो जो जो, सोइ सोइ फलहिं लहौं।
भरत सोच मोंहि केवल दुखवै, हिय की कहा कहौं।
राम बिना वे जिऐं अवध वसि, संशय सरित बहौं।
जो नहि राम फिरहिं वन ते तौ, प्रभु सँग भरत रहौ।
लखन फिरहिं पुर रक्षन हेतहिं, जो मन नृपति चहौ।
समय पाय मिथिलेसहिं कहिबी, जेहिं नहिं दाह दहौं।
भूप सहाय ईश की दाया, कुसमय कांटि रहौं।
कही सुनैना दीन बड़ाई, सिद्धि स्वयं सब हौं।
हर्षण सेवक नृपति सबहिं विधि, शंभु कृपा निबहौ।

(१३९०)

यहि विधि कही सुनी निमि रानी।
सियहिं चलन हित विनय को कीन्ही, जोरि सरोरुह पानी।
सुनत कौशिला आयसु दीन्ही, तजि सँकोच मन मानी।
जाहिं लिवाय थलहिं सह भगिनिहु, या में कहा है हानी।
हिल मिलि सबहिं सुनैना सिय लै, चली थलहिं अतुरानी।

वन ते आइ अवध सिय रघुवर, सुख दै शोक हरी।
एक छत्र महि करिहैं राजहिं, विजय विभूति बरी।
यह सब यागवल्क कहि राखे, सत सत बात सरी।
हर्षण सहत समय को काटहिं, आगे आस करी।

(१३८९)

विधि जस राखै तैसे रहौं।
राम मातु कह बोयो जो जो, सोइ सोइ फलहिं लहौं।
भरत सोच मोंहि केवल दुखवै, हिय की कहा कहौं।
राम बिना वे जिऐं अवध वसि, संशय सरित बहौं।
जो नहि राम फिरहिं वन ते तौ, प्रभु सँग भरत रहौ।
लखन फिरहिं पुर रक्षन हेतहिं, जो मन नृपति चहौ।
समय पाय मिथिलेसहिं कहिबी, जेहिं नहिं दाह दहौं।
भूप सहाय ईश की दाया, कुसमय कांटि रहौं।
कही सुनैना दीन बड़ाई, सिद्धि स्वयं सब हौं।
हर्षण सेवक नृपति सबहिं विधि, शंभु कृपा निबहौ।

(१३९०)

यहि विधि कही सुनी निमि रानी।
सियहिं चलन हित विनय को कीन्ही, जोरि सरोरुह पानी।
सुनत कौशिला आयसु दीन्ही, तजि सँकोच मन मानी।
जाहिं लिवाय थलहिं सह भगिनिहु, या में कहा है हानी।
हिल मिलि सबहिं सुनैना सिय लै, चली थलहिं अतुरानी।

देखि जानकिहिं परिजन पुरजन, भये दुखी दृग पानी।
करत प्रणाम सियहिं उर लाये, जनक आँख अँसुआनी।
राम प्रेम बिन ज्ञान अकारथ, भूप भले विधि जानी।
हर्षण प्रीति प्रवाह बहे हैं, ज्ञान विराग भुलानी।

(१३९१)

पुत्रि पवित्र करी कुल दोऊ।
लोक वेद बुध सम्पति रहनी, धवल सुयश सुख मोऊ।
सुरसरि कीर्ति जीति तव कीरति, त्रिभुवन जानहिं जोऊ।
साधु समाज सुनत अरु गावत, आनँद सिन्धु समोऊ।
सुनत सिया सकुची उर भारी, मातु अंक तन दोऊ।
भाभि भ्रात मिलि पुरजन परिजन, देख कृपा को गोऊ।
सिय रूख जानि मातु पितु संमत, श्रीनिधि सिय सँग होऊ।
दिय पहुँचाय कौशिला गेहहिं, लौटे हर्ष न रोऊ।

(१३९२)

भरत मन सोचि सोचि के नाहक।
दुखी होय हिय में अकुलावत, कहे गुरु गुण ग्राहक।
जनकहु कहे धीर को धारहिं, मुनि की कृपा अहेत।
सार सम्हार करै सब तिहरी, तजु संशय कुलकेत।
अंतरयामी जिय की जानत, प्रीति प्रतीत तुम्हार।
करिहैं सोइ सत्य रघुनन्दन, जो कहिहौ उर धार।
सुनि सुख मानि धैर्य धरि हिय मैं, बोले सोउ प्रणाम।

कुल गुरु कृपा सहाय नृपति की, हर्षण चहत गुलाम।

(१३९३)

हे नृप, तुम ज्ञानिन सिर ताजा।
शील सँकोची प्रेम विवश ह्वै, सहत कष्ट रघुराजा।
संत शास्त्र श्रुति सम्मत नीके, जानहु तुम सब भाँती।
राखि भरत रुख परहित साने, निश्चय करहिं सोहाती।
सुनि वशिष्ट के बैन भूप कह, गुरु आगे बुधि मोरी।
राम-भरत की प्रीति प्रतीती, तरकि सकै नहिं थोरी।
शरणागत वत्सल रघुनन्दन, अधमहिं आश्रय देवै।
सो किमि भरत प्रपत्तिहिं निष्फल, करिहैं हिय गुनि लेवै।
सहज दास गुण-धर्म भरत हिय, करहिं न प्रभु प्रतिकूला।
हर्षण अवशि राम रुख रखिहैं, कहा कहौं भ्रम भूला।

(१३९४)

मेरो मन यथा समुझ कहे देत।
भायप भगति प्रतीति दुहुन की, विधि हरि हर नहिं चेत।
सो मैं कहा कहौं बिनु जाने, गुरुहिं उचित मुख भाख।
आज्ञा अवसि सोउ सिर धरिहैं, अपने हिय महँ राख।
या दोउ बन्धु सभा बिच बैठी, कहहिं सुनहिं उर भाव।
निश्चय अवसि सोइ तहँ करिहै, मम विचार अस आव।
मुनिवर सुनत भूप को संमत, बूड़त नावहिं पाय।
हर्षण कहे सभा कल्ह जोरी, ऐसेहिं होय सुझाव।

कुल गुरु कृपा सहाय नृपति की, हर्षण चहत गुलाम।

(१३९३)

हे नृप, तुम ज्ञानिन सिर ताजा।
शील सँकोची प्रेम विवश ह्वै, सहत कष्ट रघुराजा।
संत शास्त्र श्रुति सम्मत नीके, जानहु तुम सब भाँती।
राखि भरत रुख परहित साने, निश्चय करहिं सोहाती।
सुनि वशिष्ट के बैन भूप कह, गुरु आगे बुधि मोरी।
राम-भरत की प्रीति प्रतीती, तरकि सकै नहिं थोरी।
शरणागत वत्सल रघुनन्दन, अधमहिं आश्रय देवै।
सो किमि भरत प्रपत्तिहिं निष्फल, करिहैं हिय गुनि लेवै।
सहज दास गुण-धर्म भरत हिय, करहिं न प्रभु प्रतिकूला।
हर्षण अवशि राम रुख रखिहैं, कहा कहौं भ्रम भूला।

(१३९४)

मेरो मन यथा समुझ कहे देत।
भायप भगति प्रतीति दुहुन की, विधि हरि हर नहिं चेत।
सो मैं कहा कहौं बिनु जाने, गुरुहिं उचित मुख भाख।
आज्ञा अवसि सोउ सिर धरिहैं, अपने हिय महँ राख।
या दोउ बन्धु सभा बिच बैठी, कहहिं सुनहिं उर भाव।
निश्चय अवसि सोइ तहँ करिहै, मम विचार अस आव।
मुनिवर सुनत भूप को संमत, बूड़त नावहिं पाय।
हर्षण कहे सभा कल्ह जोरी, ऐसेहिं होय सुझाव।

(१३९५)

सभा बैठि प्रात: कृत्य निवाहि।
सचिव साधु गुरु विप्र जननि सब, पुरजन परिजन चाहि।
मुनि प्रणाम करि चारहु भ्राता, बैठ उचित थल माहिं।
कर सम्पुट सिर नत दीनासन, दृग-जल भरत सोहाहिं।
कह वशिष्ट सुनियो भरताग्रज, भरत विनय कछु गाहि।
पुनि जस समुझि परै सो कीजै, तुमहिं छोड़ गति नाहिं।
कहे राम राउर जस आयसु, प्रथम करौ मैं ताहि।
पुनि जा कहँ जस कहब गोसाँई, करिहैं तन पुलकाहिं।
हर्षण भरत कहैं तौ उत्तम, तिन रुचि मम रुचि आहि।

(१३९६)

मुनि मै आपन कछु न विचारो।
मैं अरु मम अनुजन को सर्वस, उन बिन जियब न प्यारो।
मोहिं सहित प्रिय प्राणहिं तजिके, वचन राख पितु पारो।
तिन्हके बाक तजहुँ सहि संकट, कहहि जो भरत पियारो।
राउर आनि अहौं मैं सत सत, तिन सुख स्वसुख निहारो।
कहा करौ नहिं भरत के लागे, सबहिं करौ सब वारो।
सुनत वचन रघुवीर के गुरुवर, भरतहिं कह जनि हारो।
हर्षण कहहु बन्धु सन हिय की, भय भ्रम शंक निकारो।
सुनतहिं भरत परे प्रभु चरणन, पथ प्रपत्ति अनुसारो।

(१३९७)

प्रभु तेरो भाइ भयौ भय दाइ।
जेहि लगि वन वन फिरहु सिया सह, लिये लखन लघु भाइ।
बिनु पदत्राण पंथ कुस कंटक, चलत पद्म पद आइ।
जटा जूट सिर धरि वनि तपसी, कन्द मूल फल खाइ।
कुस साथरि करि शयन कष्ट हा, सुठि सुकुमार स्वभाइ।
कुलिस कठोर हृदय हा मेरो, निरखत नहिं विदराइ।
अतिहिं दुखी को स्वांग करत खल, जीवत वदन दिखाइ।
इतना कहत भरत महि मूर्छित, असुअन धार बहाई।
हर्षण अंक लिये रघुनंदन, पोंछे आँख जगाइ।

(१३९८)

देव तू दयाल दीन हौं दुखारी।
हौं महान अधम नाथ, ओघ अघ प्रहारी।
पाहि पाहि शरण पर्‌यो, द्वार तव भिखारी।
कृपा दृष्टि सतत रहै, याच कर पसारी।
तोहि छोरि अन्य गती, नयन नहिं निहारी।
प्रभु कहाय नरक बसौं, सुखहिं सुख सम्हारी।
चरण कमल सेव चहौ, प्रेम उर मझारी।
नाथ बिना परम पदहु, नरक सम विचारी।
कुटिल कर्म मोर उरहिं, धरे धनुष धारी।
हर्ष कल्प कोटि शतहु, होय नहिं उबारी।

(१३९९)

तुमहिं बिन मोकहँ सब जग सूनो।
कहौ भरत सत्यहिं निजहिय की, तुम बिन सुख दुख दूनो।
सहि न जाय तव दैन्य दशा यह, देखि फटत हिय मेरो।
काह करौं नहिं तिहरे हेतहि, सबहि भाँति मैं तेरो।
अब जनि अधम अनाथ कहहु मुख, श्रवण सुनन नहिं चाहें।
केवल निज रुचि अवशि जनावहु, करहुँ वेगि सुख माहे।
प्रभु मुख वचन भरत सुनि हर्षण, पुनः बन्धु पद लागे।
प्रेम अश्रु प्रक्षाल जोरि कर, कहे वचन अनुरागे।

(१४००)

दुख सब दूर भयो इहाँ आये।
जानि शरण सम्मुख जन रंजन, सबहिं भाँति अपनाये।
पाप ताप दुख दोष नाशि करि, जिय की जरनि जुड़ाये।
दूषण को भूषण करि निरखे, सुयश त्रिजग बगराये।
राखी राम सकल रुचि मोरी, जिमि पितु शिशुहित लाये।
हारेहु खेल जिताय के राखे, रहे वारहिं ते दाये।
होहुँ मलिन मन कबहुँ न निरखेउँ, खेलतउ खुनिस न आये।
प्रभु समान प्रभुहीं जग जानैं, सम अतिशय नहिं पाये।
कृपा सिन्धु करुणाकर स्वामी, पाय कुदासहु भाये।
हर्षण जानत अंतर यामी, तदपि कहौं रुचि काये।

(१४०१)

प्रभु बिनु मीत नहीं कोउ मोरे।
जननिउ करी कुटिलपन मोहिं पै, जिमि अहिनी सुत को रे।
सर्वस छीन अनाथ बनाई, मारि कलंक थपोरे।
दुखित दीन तव शरणहि ताक्यो, पर्‍यो आय प्रभु पौरे।
सुखी भयो परशत पद पंकज, गई निधी मिल ओ रे।
अब रुचि होत जो प्रभु मन मानै, फिरहिं अवध सँग मोरे।
करहिं प्रजाजन रंजन हर्षण, चाहत जन जन तोरे।
या प्रभुके बद हम बन जावहिं, मुरुकहिं नाथ अँजोरे।
या त्रय भ्रातहु मिलि वन गवनहिं, लौटहिं प्रभु सुखबोरे।

(१४०२)

अब छन छन की रुचि कहत प्रभो।
तव रुख राखन में सुख सौ गुन, जानत उरहिं विभो।
मम हित प्रभु संकोच न होवै, निज रुचि निरखि कहौ।
मम दिशि देखि जो आयसु दैहैं, तौ मोहिं कष्ट अहो।
आज्ञा सम नहिं स्वामिकी सेवा, सेवक सुखहिं लहे।
सोइ प्रसाद सुखप्रद जन पावै, विनवत शरण गहे।
सो न दास जो प्रभुहिं सँकोचै, निज हित लागि रहा।
अह मम सन्यो स्वरूप विनाशत, हर्षण दुःख दहा।

(१४०३)

करि वर विनय चरण गहि रोये।
आयसु देहिं नाथ निज मन की, तबहिं भरत सुख सोये।
आरत हरण वचन सुनि आरत, बन्धुहिं अंक उठाये।
अश्रु पोंछि पुनि प्यारि सूँघि सिर, बोले बचन अमाये।
कुसमय विपति परी हम तुम पै, बाँटै मिलि चित चाये।
गुरु की कृपा भूपके तेजहिं, काटैं अवधि बिताये।
पितु आज्ञा सब धर्म की टीका, पालहिं दोउ लव लाये।
हर्षण चौदह वर्षहिं बीते, करब तोर मन भाये।

(१४०४)

समुझत हौं यद्यपि अति नीके।
मोर विरह अति असह शोक प्रद, तव उर उठई हीके।
तुमहिं अवधि भरि अतिहिं कठिनता, डरपत है मन मोरा।
तदपि करौं का सहे ते बनई, आरज धर्म कठोरा।
पितु मोहि तजे प्राण बरु छोड़े, निज वचनन के लागी।
तिनके बैन मानि दोउ भाई, करैं कर्म बनि त्यागी।
मम रुख राखि चले तुम सब दिन, अजहुँ बात मम मानी।
हर्षण जाय पुरी प्रतिपालहु, मम सुख हेतु सुजानी।

(१४०५)

दीन नाथ दिय मोर सुधारि।
पतित उधारन प्रणतके पालक, वाँको विरद विचारि।

मन प्रसन्न तजि सकुच जो आयसु, दिये दास हित जानी।
लाभ लह्यो प्रभु संग गये को, जन्म सुफल कर मानी।
अवसि अवधि भर अवधहिं सेइहौं, सेवा समुझि तिहारी।
तव प्रताप उर राखि ताहि बल, करौं पुरी रखवारी।
बीते अवधि दर्श करि चरणन, सौंपहुँ गो सब रामा।
हर्षण सेवक सहज स्वभावहिं, करिहौं टहल अकामा।

(१४०६)

कोउ अस न कियो जस भरत किये।
भरत सरिस नहि भ्रात जगत महँ, पुनि पुनि प्रभु कह अंक लिये।
प्रेम मूर्ति गुण गेह सुहृदतम, अनुपम मोरे जीव जिये।
उर लै पुनि दृग जल नहवायो, भरतहु पद प्रक्षाल दिये।
दुहुँ की प्रीति परस्पर देखी, सुर नर मुनि जयकार किये।
बर्षत सुमन देव भरि नेहनि, सुख सनि दुंदभि नाद किये।
कहत राम हे बन्धु बीर वर, वचन बाण मम सह तो लिये।
धन्य धन्य जननी तोहिं जनमी, त्रिभुवन तीर्थन तीर्थ किये।
काह करौं कुसमय कठोरपन, भरत न कोसेउ हर्ष हिये।

(१४०७)

प्रभुजी मैं तो आनँद अतिहिं अघायो।
सो सब जानत अंतर यामी, वचन न कहत बनायो।
तव रुचि राखि परम पुरुषारथ, अरु परमार्थहिं पायो।
पै अधार कछु चहत दास यह, सेवत जाहि सुभायो।

अवधि पार पावौ भव-भंञ्जन, करहिं कृपा सुख दायो।
गुरु समीप सकुचे रघुनन्दन, द्रुत मुनि आयसु पायो।
दया द्रवित निज पाँवरि दीन्ही, भरत शीश उर लायो।
श्रीराम: शरणं मम बोले, हर्ष वारि दृग छायो।

(१४०८)

प्रभु-पद पाँवरि शीश धरे।
श्रीराम: शरणं मम कहि कहि, नृत्यत भरत अरे।
पुलक तनोरुह गद गद वाणी, नयनन नीर झरे।
प्रेम प्रकाश पूरि थल बीचहिं, सबहिं अँजोर भरे।
सुर नर मुनि सब नृत्यन लागे, सकल सनेह ढरे।
धन्य भरत की प्रीति कहत सब, त्रिभुवन वसहिं करे।
ब्रह्मरूप सिगरे ब्रह्म ज्ञानिहु, प्रेम प्रवाह परे।
हर्षण दाँत तरे करि अँगुली, सोचत सबहिं खरे।
योग-ज्ञान बिनु प्रेमके व्यर्थहिं, साधन सकल जरे।

(१४०९)

जाको रघुनन्दन अंग किये।
तेहि की गति न त्रिदेवहु समुझत, प्रेम पीयूष पिये।
हरि इच्छा प्रकृतिस्थ भये सब, तउ दृग नीर लिये।
जाइ भरत पुनि बन्धुहिं बन्दे, विनवत सकुच हिये।
तिलक साज सजि आन्यो इतहीं, तीरथ तोय लिये।
तेहिं कहँ राज रजायसु नाथा, सुनि प्रभु वचन दिये।

बीते अवधि बिना नृप आसन, गिनहुँ अयोग हिये।
हर्षण अत्रि मुनी के सम्मत, जल कहुँ धरहु प्रिये।

(१४१०)

लहि गुरु सम्मत प्रेम भरे।
प्रभु-पद-पद्म पादुकनि लैकै, आनँद अतिहि अरे।
करि अभिषेक तीर्थ के जलते, कनक के पीठ धरे।
चन्दन पुष्प अर्पि दल तुलसी, पूजन सविधि करे।
छत्र चमर लै सेवा किन्हीं, सुर मुनि सुमन झरे।
अस सुख लहेव मनहु रघुनन्दन, नृप पद बैठ घरे।
कियो यथा संभव सो उत्सव, दोउ दल सुखहिं भरे।
सबहिं प्रशंसत भरत के भावहिं, हर्षण हृदय हरे।

(१४११)

अत्रि मते गुरु आयसु पाई।
प्रभु पाँवरि प्रक्षालित जलकहँ, बासन भरि लै चले त्वराई।
कामद गिरि पश्चिम थल पावन, जेहिं अनादि सब मुनिन सुनाई।
कूप खनाय तोय तहँ राखे, सुर नर मुनि सब जय जय गाई।
भरत कूप धरि नाम ताहि को, सबहिं सुनाय कहे समुझाई।
प्रेम सनेम निमज्जत जग जन, भुक्ति मुक्ति पइहैं सुखदाई।
स्वयं सबहिं स्नान किये तहँ, गवने आनँद सिन्धु समाई।
भरतहु हर्ष समाजहीं लीन्हें, आये जहाँ सिया रघुराई।

(१४१२)

बसे दल दोउ हिय हरि हरि हरि।
राम-अत्रि-गुरु आयसु लहिके, हर्ष हिय भरि भरि भरि।
विहरत गिरि कानन चितकूटी, जीव-प्रिय करि करि करि।
वन कुसुमित अरु झरना झाँकत, झरत जल झरि झरि झरि।
सादर सुर मुनि प्रणमत सेवत, भेंट बहु धरि धरि धरि।
हर्षत निरखि राम पद अंकहि, अश्रु दृग ढरि ढरि ढरि।
पाँच दिवस महँ सब सब देखे, भिल्ल संग चरि चरि चरि।
निरखि राम छन सम दिन जावत, दोष दुख जरि जरि जरि।
हर्षण लगत न जावैं इतते, उर विरह डरि डरि डरि।

(१४१३)

भल दिन समुझि राम निज मन में।
गुरु सन कहे सकुचि सिर नत ह्वै, कष्ट सहत सब बन में।
आप इहाँ पितु सुर पुर माहीं, अवध सून यहि छन में।
जो प्रभु चहैं सबहिं लै गवनै, छमहि कह्यो बहु वन में।
सुनत वशिष्ठ सबहिं समुझाये, चलनि चहिय गुनि मन में।
हरि-इच्छा अरु सुनि गुरु आयसु, सबहिं सने विरहन में।
कहा करें न बसाय तहाँ कछु, नयन भरे असुअन में।
हर्षण चलन साज सब साजे, दुःख भर्‌यो जन जन में।

(१४१४)

जनक कुँअर प्रभु पहँ विहाल।
चरण टेक विरहातुर याचत, बन वसि होहुँ निहाल।
कहे जनक हे प्रिय जन रंजन, तिहरे सरहज श्याल।
नव पद-पंकज भ्रमरी भ्रमरा, तजन न चाह रसाल।
राम-लखन सिय सेव बनहिं बसि, करन चहत यहि काल।
सुख सह जननि जनक की आयसु, पाये दीन-दयाल।
होहुँ अवध महँ भरतहिं सेवत, कटिहैं दिवस कराल।
हर्षण श्वसुर वचन सुनि रघुवर, बोले वचन विशाल।

(१४१५)

जो मैं सो तो कुअँर कहबें।
जो हैं कुअँर सोइ मोहिं मानै, मन की बात बतावैं।
एक आत्म दुइ देह प्राण इक, लीला हेतु लखावैं।
बने परस्पर चन्द्र चकोरा, मुख निरखत सुख पावै।
इक इक की सुख अरु इच्छा, निज सुख चाह बुझावै।
मम बनवास इनहिं को वासा, शंक न नेक समावै।
इन पुर रहब हमारो रहिबो, छोड़ सकुच समुझावै।
मम रुचि राखि रहहिं ये मिथिला, हर्षण हिय हर्षावै।

(१४१६)

राम वचन सुनि लागि समाधी।
लक्ष्मीनिधि स्थिति भै एकी, द्वैत दशा नहिं बाधी।

सब कहँ कह प्रभु लखहु कुँअर को, मोहिं में चित्त समाये।
भिन्न रहे नहिं काह करौं मैं, अस कहि नाथ जगाये।
कुँअरहिं पकड़ि गए एकान्तहिं, लीला शक्ति दिखाई।
विधि हरि हर सह सब संसारा, जेहिं वश नचत गोसाई।
श्री निधि लखे अपुन को मिथिला, रामहिं वन को वासा।
प्रभु कह एहि नहि मेटि सकै कोउ, गबनहु पुर सुख रासा।
हर्षण हाँ कहि किये प्रणामहि, मोचत नयनन बारी।
हरि इच्छा बलवान समुझ हिय, कीन्हे द्रुतहिं तयारी।

(१४१७)

भक्त बछल प्रभु विरद तिहारो।
सिखइय मोहिं अवध वसि अचरत, होय मोर निस्तारो।
कर्ता कारयिता सब तुमहीं, हौं अबोध अति वारो।
औरहु एक विनय मम स्वामी, सुनिये अधम उधारो।
बीते अवधि प्रथम दिन जो मोहिं, दिये न दर्श उदारो।
तौ प्रभु मोहिं जियत नहिं पैहैं, पीछे जो पग धारो।
हौं लघुबन्धु नाथ को सत्यहिं, वृथा न बचन उचारो।
अस कहि भरत चरण गहि रोये, हर्षण विरह विदारो।

(१४१८)

जस तस अहहिं प्रभो हम तेरे।
मेरी लाज तुमहिं को रघुवर, राखैं दूर या नेरे।
बारहि ते तव शरण गही है, अन्य आस नहिं मेरे।

प्रभु-पद-पाँवरि-सचिव बन्यो मैं, बसौं अवध प्रभु प्रेरे।
अवधि बीत बिन दर्शन पाये, प्राण रही नहि गेरे।
सिसकत भरत परे प्रभु चरणन, विरह-विषाद के घेरे।
माँगत विदा नमन करि पुनि पुनि, अंक लिये हरि हेरे।
प्रेम अश्रु अनुजहिं नहवाये, हर्ष हियहिं दै डेरे।

(१४१९)

प्रभु लै अंक भरत कहँ प्यार।
राजनीति की सीखहिं दैके, कहे वचन सुख सार।
अवधि बितै प्रथमहिं दिन अइहौं, देखन वदन तिहारा।
तुमहि लखे बिनु जियव न हर्षण, मानहु वचन हमारा।
जाहु अवध अब सहित समाजहिं, किहेउ न सोच खभारी।
मुनि-मिथिलेश रहत तजि शोकहिं, हम तुम रहैं सुखारी।
सुनत भरत पुनि पद लपटाने, विरह व्यथा बढ़ि आई।
राम लिये उर लाइ नयन भरि, दीन्ह विदा मुरझाई।

(१४२०)

लछिमन जात भरत को जाने।
सादर किये प्रणाम प्रेम भरि, सोउ हिय लै लपटाने।
रामहिं मिले प्रणमि रिपुसूदन, नयन नेह जल आने।
प्रभु उर लाइ प्यारि सिख दीन्हे, भरतहिं मोंहिं करि माने।
सुयस धवल जग होइहि तोरा, जाहु अवध सुख साने।
पुनि शत्रुघ्न मिले निज बन्धुहिं, कर प्रणाम विरहाने।

लखन सप्रेम उरहिं तेहि लैके, दिये विदा विलगाने।
बन्दे सियहिं बहुरि दोउ भाई, लहि आशिष विलखाने।
हर्षण चले नयन जल भिगवत, भूमिहिं भान भुलाने।

(१४२१)

रामलखन सब मातन भेंटे।
परि परि पगनि प्यार अरु आशिष, पाये प्रेम लपेटे।
पुनि गुरु गुरु–पत्निहिं प्रणमी, पदरज सिर धरि लीने।
सबहिं संभार करव निज पुरकी, विनती बहु विधि कीने।
जनक सुनैना श्रीनिधि सिद्धिहिं, सह समाज दोउ भाई।
मिले यथोचित विरह बहे सब, करुणा वरणि न जाई।
जेहि लखि पशु पक्षिहु अकुलाने, लता वृक्ष कुम्हिलाये।
दस दिशि चीतकार रव छायो, हर्ष कहै किमि गाये।

(१४२२)

सिय विरहाइ भेंट सब सासु।
कह कर जोरि सेव ते वंचित, भई अहो सुख नाशु।
करि प्रणाम शुभ आशिष पाई, विरह न जाई प्रकासु।
बहुरि वशिष्ठहिं तियसह वन्दी, आशिष पाइ हुलासु।
जननि जनक निज भ्राता भाभिहिं, मिली वियोग विकासु।
दुहु समाज की औरहु नारिन, भेंटी पहुँचि सकासु।
करुणा कटकइ उतरि तहाँ हठि, सब कहँ कीन्ह हरासु।
पुनि पुनि हिलि मिलि हर्षण सबहीं, किय प्रस्थान उदासु।

(१४२३)

मुनि पहुँचावन हित नव नागर।
जात चले करुणा रस बोरे, यद्यपि सुख के सागर।
प्रीति रीति जानत जगबन्दन, भक्त बछल गुण आगर।
मँदकिनि तीर पहुँचि गुरु फेरेउ, लौटे कुटी उजागर।
विरह विकल बह वारि विलोचन, स्वजन बिना दुखलागर।
रामलखन सिय दशा बिलोकी, जड़ चेतन दुख पागर।
सुर समुझाय शरण पुनि लीनी, विनती किये मुखागर।
सुन रघुनाथ अभय तिन्ह दीनी, गये देव निज आगर।
हर्षण अत्रि आदि प्रभु पूछी, गवने गेह उजागर।

(१४२४)

भरत सिर-भूषण पाँवरि कीने।
जात चले सिय रामहिं सुमिरत, नेह नयन भरि लीने।
जनक सुवन संग राम चरित्रहिं, कहत सुनत तन छीने।
तैसहिं नृप वशिष्ठ मुनि कौशिक, राम बिरह रस भीने।
राम मातुसह तिमि निमि रानी, पुरवासी अति खीने।
गिरि अदर्श गुनि किये दण्डवत, प्रभु मंगल लव लीने।
जनित वियोग कष्ट करि अनुभव, चलत कृशित बल हीने।
गुरु आज्ञा सब चढ़े वाहनहिं, पहुँच प्रयाग अधीने।
आये अवध बसत मग जहँ तहँ, हर्षण निधि बिनु दीने।

(१४२५)

भूप–सचिव–गुरु सबहिं बोलाये।
पुरजन परिजन प्रजा समूहहिं, समाधान करि स्ववस बसाये।
निज निज काज सबहिं जन ओधे, जो परिचारक जो पद पाये।
सुदिन शोधि गुर सम्मत भरतहु, नृप आसन पादुका पधराये।
छत्र चमर लै सेवा कीन्हे, पाँवरि–मन्त्री निजहिं बनाये।
मातु सेव रिपुहन कहँ सौंपे, औरहु कार्य समय जो आये।
राज कार्य सब चलत सुचारु, जेहि ते प्रजा अनंद अघाये।
हर्षण भरत भुआलहिं लहिके, सबहिं सुखी जनु दशरथ पाये।

(१४२६)

गुरु ते पूँछि भरत सिर नायो।
नन्दि–ग्राम करि पर्ण कुटीरहिं, भुई खनि गुफा बनायो।
कुस साथरि अरु अजिन बसन करि, कन्दमूल फल खाये।
जटा जूट सिर धरे संयमी, व्रत लखि मुनि सकुचाये।
प्रभु पद प्रेम निरन्तर बाढ़त, नेह नीर दृग छाई।
अविरल रटत राम सिय नामहिं, कथा कीर्तन गाई।
पूजत प्रिय श्री राम पादुका, अवधि दिनन चित दीने।
पाँवरि आयसु कर पुर काजहिं, सेवा समुझि प्रबीने।
दूबर देह दिनहिं दिन होवति, बढ़त तेज अनुरागा।
हर्षण भुवन भरत सम भरतहिं, राम बन्धु बड़ भागा।

(१४२७)

अवध नर नारी प्रेम पसरि।
राम दरशहित कर व्रत संयम, अहनिशि नाम पुकारी।
कौशिल्या की दशा कहै को, आँखिन छाय अँधेर।
गिनत अवधि दिन समयको काटति, पूत पतोहुहिं टेर।
कछु दिन रहि पुर काज सम्हारी, जनक समाजहिं लीन।
पूँछि भरत-गुरु-सचिवहिं सादर, गे मिथिला दुखि दीन।
राज-काज अरु ज्ञान कहानी, हर्षण नहिं चित चाहि।
पै प्रभु सेवा समुझि सम्हारत, बसे बिरह गृह माहि।

(१४२८)

जनक सुवन मन धीर न आवै।
राम सिया बन वसत कष्ट सहि, मोहिं गृह भोग भुलावै।
राम श्याल सिय बन्धु भयो हा, प्रेमी कहि जग गाये।
उचित न नेक वसव निज सदनहिं, भगिनि भाम जो भाये।
अस विचारि लहि गुरु पितु आयसु, तिय समेत अकुलाई।
कमला तीर विपिन करि कुटिया, मुनि व्रत लिय अपनाई।
संयम नियम कठिन करि सहजहिं, भोगन भान भुलायो।
हर्षण हेरि सखन अरु भ्रातन, सोइ नेम व्रत भायो।
पुर नर नारि देश के सबहीं, राम दरश लय लीने।
करत नेम उपवास गृहहिं बसि, अवधि समय चित दीने।

(१४२९)

जब ते भाम भगिनि तजि आये ।
तब ते जनक सुवन बसि वन में, विरह के सिन्धु समाये।
पर्ण कुटी महि खनि कुश डसिके, रहत जटा सिर लाये।
कन्द मूल कहँ खाइ मुनिन बढ़, व्रत संयम अपनाये।
सादर राम पनहिंया पूजत, जेहिं सिधि कोहवर पाये।
विरह दशा दश प्रगटन नित नित, सिगरो भान भुलाये।
झरत नयन जल अहनिशि शोकित, साबन भादौं भाये।
रटत राम सिय सात्विक चिन्हन, हर्षण तन दरशाये।

(१४३०)

उत प्रभु वसत गिरि चित्रकूट।
अमृत मय कर चरित अलौकिक, गुप्त प्रगट कल्याण बूट।
सुख बिलास थल आनँद वर्धन, विदित सु महिमा चार खूट।
राम लखन सिय सुरति अवध के, झरत वारि दृग प्रेम पूट।
मुनि समूह बिच बैठे सोहहिं, कबहुँ ध्यान धर नाहिं टूट।
विपिन विहार कबहुँ सो करहीं, खाब पियब कहुँ जात छूट।
सरित निमज्जन कबहुँ केलि युत, पुष्प चयन कहुँ करत जूट।
नयन वन्त बनचर सुख पावत, हर्ष मनहु बड़ निधिहिं लूट।

(१४३१)

सुर पति पुत्र वधू विचारि।
सखिन संग चितकूटहिं आई, राम मुखहिं निहारि।

सफल मनोरथ नृत्य गान करि, सेइ प्रेम पसारि।
गई भवन वरणत गुण गानहिं, तन मन सुधि विसारि।
सुन्दर श्याम सलोनी मूरति, झूलति दृगन मझारि।
प्रेम चिन्ह बर वदन दिखावहिं, छिपये छिपे न हारि।
पति के पूँछे सबहिं बताई, जेहि विधि भइ सुखारि।
सुनि जयन्त अमरष करि हर्षण, वैर प्रभु ते धारि।

(१४३२)

विहरत बन सिय-पिय सुख कन्द।
निज कर कंज चयन करि सुमनन, भूषण रचि नृप नन्द।
अरसि परसि सीतहिं पहिराये, सादर सदा स्वछन्द।
मैन शिलाको तिलक कियो पुनि, सिंगार्‌यो मुख चन्द।
प्रेम पगे प्यारी अरु प्रीतम, मुसकत मधुरे मन्द।
ललित मंजु नव पल्लव डासी, फटिक शिला सानन्द।
एक जगैं इक पौढ़ि परस्पर, सिर रखि अंक अनन्द।
तेहिं अवसर तहँ गयो जयन्ता, हर्षण हिय बहु द्वन्द।

(१४३३)

अभिमानी काक को रूप गही।
सठ चाहत रघुपति बल देखन, सुर पति पुत्र सही।
सीतहिं चरण चोंच हति पापी, तरु पर बैठ वहीं।
चल्यो रुधिर प्रभु जानि देखि तेहिं, सींकहि धर धनु हीं।

प्रेरित मंत्र ब्रह्म शर बनिके, छुटि गो सो तबहीं।
भागि काक पितु पुर शिवलोकहिं, गोअज-लोक दही।
फिरा श्रमित सब लोकन भय भरि, बैठन कोउ न कही।
राखि सकै को राम को द्रोही, तेहि भै अनल मही।
देखि दुखी तेहिं नारद हर्षण, दाया सरित बही।
पठये तहँ जहँ प्रणतन पालक, सो चलि शरण चही।

(१४३४)

अब प्रभु तेरी शरण में आयो।
मैं मति मन्द नाथ प्रभुताई, जानि के वैर बढ़ायो।
तजि अभिमान पुकारत आरत, त्राहि त्राहि गोहरायो।
मोकहँ ठौर कतहुँ नहिं कहि कहि, पर्‌यो भूमि भहरायो।
दुखमय वचन सुनत तहँ सीता, पति सों विनय सुनायो।
पाहि पाहि एहि दीनहिं रघुवर, दीनबन्धु श्रुति गायो।
सुनत दयामयि प्रिया की वाणी, जरत ते काक बचायो।
यदपि वधन के योग द्रुतहि पै, प्रभु कृपालु करुणायो।
एक नयन करि तज्यो तुरन्तहिं, शर अमोघ बतरायो।
हर्षण ताहि भजसि सठ मनुआ, पतितन जेहि अपनायो।

(१४३५)

प्रभु नित चित्रकूट गिरि भीतर।
अति अवकाश जहाँ रम्यस्थल, विहरत सियसह प्रमुदित प्री तर।
गंगादिक शुचि सरिता सिगरी, वन देवी धरि नर तिय रूपा।

औरहु जे गंधर्वि किन्नरी, सेवहिं सियहिं सुभाव अनूपा।
विविध भाँति करि लीला लोनी, नृत्य वाद्य संगीत रिझाई।
जेहि विधि सुखी रहैं दोउ दम्पति, सेवहिं निज परिकर की नाई।
जानत संत रसिक गिरि लीला, कामद रास रहस्यहिं गाये।
गोपनीय हर्षण तउ आजहु, कोउ कोउ प्रेमी अनुभव पाये।

(१४३६)

जनम के दिन प्रातहिं श्रीराम।
चैत्र शुक्ल नवमी गुनि सोचत, जो मैं रहत स्वधाम।
वर्ष ग्रन्थि मम मातु मनावति, उत्सव मचत तमाम।
हाय उहाँ जननी दुख पाई, इहाँ विधी मोहिं वाम।
अस विचारि सुधि भूलि धरे सिर, सिय अंकहि अभिराम।
चित्त गगन देखे जन्मोत्सव, आनंद लहे ललाम।
अनुजन युत निज मन्दिर सोहे, सिया विराजति वाम।
जननि जनक सुख सिन्धु समाये, पुरहिं परम विश्राम।
पुनि जगि प्रियहिं सो दृष्य सुनाई, हर्षण किय नित काम।

(१४३७)

मुनि पत्नी वन देवि सिधाई।
मंगल द्रव्य साजि सुख सानी, रघुवर जन्म मनाई।
वर्ष ग्रन्थि मुनि वेद उचारत, बाजी विपुल बधाई।
झरत प्रसून देव नभ ऊपर, नृत्यहिं सुर तिय गाई।

कोल भिल्ल भल प्रेम दिवाने, निज तन भान भुलाई।
अटपट वाद्य गीतहूँ अटपट, नचे तियन सह आई।
जड़ चेतन सब भये प्रेमवस, प्रेम मूर्ति प्रभु पाई।
निरखि नेह सिय रामहु रीझे, प्रीति रीति दिखराई।

(१४३८)

प्रभु तुम दीन को कियो वरण।
भक्त सुवांछा कल्पतरू तुम, बानि अशरण शरण।
मोरे कुटिहिं आय अपनावौ, सेउँ सुखभरि चरण।
बांके सिद्ध-हृदय को लखि के, कृपा वारिध ढरन।
अनुज सिया सह तेहि के पहुँचे, पूरि मुनि को परन।
आवत जानि प्रभुहिं सो भूल्यो, नृत्य नयनन झरण।
प्रेम विभोर कुटीर प्रवेशी, सेव सुख भरि चरण।
प्रेम मूर्ति कहँ प्रेमहिं दीन्हे, हर्ष हिय को हरण।

(१४३९)

सबहिं मोहिं जानै होइय भीर।
मिथिला अवधहु ते बहु लोगा, आवत जात अधीर।
असविचारि मुनियन मिलि रघुवर, अनुज सिया सँग वीर।
चित्रकूट ते बिदा कराई, गये अत्रि मुनि तीर।
करत प्रणाम देखि दोउ भाइन, वर्षत लोचन नीर।
पुलकि उठाय उरहिं लपटाये, मोहे श्याम शरीर।
आशिष लहि रहिके तेहिं आश्रम, चलन चहे सुख सीर।

मुनि तिय पतिव्रत धर्म को वरणी, नमत सियहिं मिलि थीर।
स्तुति करि प्रभु भक्ति लिये ऋषि, चले हर्ष हिय हीर।

(१४४०)

मग मँह मारि विराधहिं राम।
कृपा सिन्धु करि दया दैत्य पै, पठये अपने धाम।
सुमन वरष सुर जयति पुकारत, आगे चले अकाम।
सुखमय वाट देई महि सेवति, घन ते नहिं लग घाम।
शीतल मन्दं सुरभि बह वायू, प्रकृति छटा अभिराम।
आगे राम लषन चल पीछे, बीच सिया सुखधाम।
पहुँचि गये सरभंग के आश्रम, आतिथि लहे ललाम।
प्रेम पाइ योगाग्नि जर्‌यो सुनि, प्रभु निरखत अविराम।
हर्षण सो हरि धाम गयो पुनि, हरिहु चले अन्य ठाम।

(१४४१)

ज़ात वनहिं वन राम कृपाला।
मुनिवर विपुल लगे सँग सोहत, लोचन लोभ रसाला।
अस्थि समूह देखि रघुनन्दन, पूँछे दीनदयाला।
निशिचर निकर सकल मुनि खाये, वरणे मुनिन विहाला।
सुनि रघुवीर नयन जल छाये, फरकत बाहु विशाला।
करहुँ निशाचर हीन मही मैं, कीन्हे प्रण तेहि काला।
भुजहिं उठाये देखि प्रहर्षे, वर्ष सुमन सुर माला।
हर्षण जय रघुनाथ की बोले, ऋषिन समेत निहाला।

(१४४२)

ऋषि अगस्त को शिष्य सुजाना।
नाम सुतीक्षण सुन्यो श्रवण निज, आय रहे भगवाना।
मन क्रम वचन राम को दासा, लेन चल्यो अगवाना।
नाचत गावत सात्विक चिन्हन, प्रगटेव प्रेम दिवाना।
कहुँ आगे कहुँ पाछे जावत, भूलि भूमि भहराना।
तरु के ओट लखत रघुराई, दौरि ताहि लपटाना।
जागत नाहि जगाये कैसेहु, तव प्रभु मन अनुमाना।
हृदय चतुर्भुज रूप दिखायो, सुनि अतिशय अकुलाना।
हर्षण जागि लख्यो निज नाथहिं, पर्यो चरण सुखसाना।

(१४४३)

रघुवर ऋषिहिं लाय हिय माहीं।
प्रेम पारखी प्रेम में बोर्‌यो, आँखिन अश्रु सोहाहीं।
पुनि प्रणाम मुनि लखन जानकिहिं, गो लिवाय थल अपने।
करि सेवन कछु दिन तहँ राख्यो, आनँद लह्यो सुधापने।
करि वर विनय प्रेम लहि मागेव, मम उर एइ प्रभु वासा।
एवमस्तु कहि राम चले पुनि, श्री कुम्भज ऋषि पासा।
चतुर सुतीक्षण संग मह गवने, गुरु आश्रम नियराई।
जाय प्रणामि मुनि ते कह आवत, इष्टदेव रघुराई।

(१४४४)

सुनत अगस्त कढ़े कुटि द्वार।
श्याम गौर मद मर्द मदन के, जोरी नयन निहार।

करत नमन दोउ बन्धु उरहिं लै, पूजेउ आँसून धार।
करि आतिथ्य कछुक दिन राख्यो, मानि सुखन सुख सार।
जेहि विधि निशचर नाशको पावहिं, कहहु सो यत्न उदार।
सुनि प्रभु के अस वचन सो बोले, मोहि ते पूँछ विचार।
बिधि हरि हरहु भेद नहिं जानै, भृकुटि विलास संहार।
दण्डक वन पुनीत चलि कीजै, करु पंचवटी विहार।
तदपि हृदय आदित्यहिं लीजै, हर्षण मन्त्र हमार।

(१४४५)

करि मुनि वरहि प्रणाम चले रघुवीर।
पंचवटी नियराइ मिले तहँ, गृद्धराज मति धीर।
बहु विधि प्रीति दृढ़ाइ जटायु, कहेउ वसहु सरि तीर।
गोदा निकट बसे प्रभु सुखते, कीन्हे पर्ण कुटीर।
सेवत सुर प्रत्यक्ष औ ओटनि, स्वारथ सने अधीर।
दण्डक वन भो परम सुहावन, परसत पद सुखसीर।
कन्दमूल फल पुष्प भूमि भल, बहत वसंत समीर।
ऋतु अनऋतु तजि तरुसब फलिगे, कुहकति कोकिल कीर।
हर्षण जेहि वन राम विराजें, तेहि को भाग गंभीर।

(१४४६)

राघौ जू जब ते आय वसे।
तबते भो वन मंगल दायक, सुरमुनि भयहिं नशे।

सुखसह ऋषि विचरतगिरि कानन, प्रभु प्रताप बल पाई।
करि जप जोग यज्ञ व्रत संयम, धर्म ध्वजा फहराई।
ईश-जीव-अरु माया भेदहिं, अरु परमार्थ प्रभाव।
पूँछे लखन राम समुझावत, यथा तथ्य चित चाव।
कर्म ज्ञान भल भक्ति रहस्यहिं, कहत सुनत सुख माहीं।
कछु दिन बीत गये तहँ हर्षण, शोक शंक भय नाही।

(१४४७)

रघुवर के चरण चिन्ह महि देख्यो।
दुष्ट हृदय रावण की बहिनी, मोहित निजमन लेख्यो।
प्रभु पद अंक सहारे आश्रम, करि अन्वेषण आई।
काम विवश भै श्याम वदन लखि, यद्यपि विधवा गाई।
रवि-मणि रविहिं देखि जिमि द्रवई, तैसहिं द्रवी सुपनखा।
सुन्दर वपु धरि राम सों बोली, बात बढ़ायके कनखा।
मम सम नारि न तुम सम पुरुषहु, विरच्यो विधिहु विचारी।
पति अनुरुप मिल्यो नहिं त्रिभुवन, तेहि ते रही कुमारी।
तुमहिं देखि कछु मो मन मान्यो, अबहिं बनौं मम नाहा।
हर्षण रहहु अनन्द अमाये, करहु सुफल मम चाहा।

(१४४८)

सियहिं चितय प्रभु कह्यो मैं ब्याह्यौ।
अहैं कुमार लखन लघु भाई, सोइ तुमहिं चित चाह्यो।
असकहि अनुज के पास पठायो, सो कह मैं प्रभु दासा।

वे स्वतन्त्र चह नारि बरैं बहु, कौशल पति सुख रासा।
मम ढिग तोहि सुपास न एकहु, सुनि खिसिआनि सकामा।
रूप भयंकर प्रगटि के दौरी, सीतहिं खान कुवामा।
तबहिं राम लछिमनहिं बुझायो, करि संकेत स्व पाणी।
समुझि किये बिन नासा काना, लखन लिये धनु पाणी।
मनहुँ चुनौती रावण कहँ दै, पठये परम प्रवीरा।
रुधिर चुअत चिल्लात भगी सो, हर्ष भ्रात के तीरा।

(१४४९)

गई खर दूषन पै विलपाती।
समाचार सब रोय सुनाई, कही न आपन बाती।
सुनि त्रिसिरादि सहस्त्र चतुर्दश, लिये दैत्य उतपाती।
अशुभ रूप तेहिं आगे करिके, पहुँचे जहँ खल घाती।
लखि दानव प्रभु सियहिं छिपाये, रक्ष लषण भल भाँती।
सजि सारंग कटि भाथ कसे हरि, शोभा सिन्धु सुगाती।
देखि रूप सर सके न छोरी, मोहे रिपु रस राती।
राम केलि रुचि विवस भ्रमित सब, भिड़े परस्पर माती।
हर्षण करि संग्राम मरे सब, बची सुपनखा ताती।

(१४५०)

रावण पहँ पहुँचि सुपनखा रोई।
तव भगिनि सुनि नासा काना, काटे नृप सुत दोई।

तिनके साथ नारि एक सुन्दरि, त्रिभुवन महँ नहिं कोई।
सोइ हते खर दुषण त्रिशिरा, सहस चतुर्दश खोई।
निशिचर हीन धरणि वे करिहैं, समुझि परै जस जोई।
सुनत दशानन जरेउ हृदय महँ, अशुभौ भे दुख मोई।
तदपि गयो मारीच के नेरे, कहेउ कपट मृग होई।
पंचवटी चलु साथ हमारे, राज कुँअर जहँ ओई।
प्रभु प्रताप कहि सो समझायो, हर्ष न मान्यो सोई।

(१४५१)

रघुवर इत जिय जुगुति बनाई।
कन्द मूल हित लखन गये जब, सियहिं कह्यो समुझाई।
निशिचर नास करौ मैं जौं लगि, करहु अग्नि महँ वासा।
पति रुचि सीता अनल समाई, छाया राखि प्रभु पासा।
इक सम रूप शील गुण रहनी, लखनहु मर्म न पाये।
हरि इच्छहिं ते रण की लीला, करन सिया चितचाये।
अकल अनीह यदपि प्रभु हर्षण, सुख स्वरूप अठयामा।
लीलाकरि लीला पुरुषोत्तम, तदपि लहैं विश्रामा।

(१४५२)

रावण मोहि न मारहि सोच्यो।
राम बाण ते मरब अतिहिं भल, मत मारीचहिं रोच्यो।
खल सँग चल्यो हर्ष मन माहीं, देखिहौं दृग रघुराई।
जेहि पीछे योगी जन धावत, मम पीछे सो धाई।

मुरुकि मुरुकि मुख पंकज पेखिहौं, जन्म सुफल जिय माना।
होइ कनक मृग कुटिया आगे, चरन लग्यो तृण जाना।
रुचिर मृगहिं लखि सिय कह स्वामिहिं, दृग–प्रिय मृग को भूपा।
सत्य संध प्रभु वध कर एही, लावहु चर्म अनूपा।

(१४५३)

लखनहिं सौंपि सिया रखवारी।
कटि निषंग कर साजि शरासन, चले सुरन हितकारी।
माया मृग छल बल बहु करिके, प्रभुहिं दूर दिय टारी।
अंतरयामी करि शर लक्ष्यहिं, दिय मारीचहिं मारी।
मरत प्रगटि निज देह दैत्य सो, हा हा लखन पुकारी।
आरत गिरा सुनत तहँ सीता, लखनहिं जाव उचारी।
प्रभु प्रताप सो बहु समझाये, तदपि हृदय नहिं धारी।
मर्म वचन सुनि लछिमन बरबस, रेख खींच कुटि द्वारी।
वन दिशि देव सौंपि द्रुत गवने, हर्षण जहँ धनुधारी।

(१४५४)

रावण यतिवर बनि वेश को लाज।
आश्रम सून देखि हित चोरी, श्वान सरिस कर काज।
माग्यो भीष रेख के बाहर, सुनतहिं सिया अवाज।
दानि सिरोमणि अंतर यामिनि, प्रमुदित भीषहिं साज।
देन लगि है रेख के भीतर, सो न लियो मन माज।
रक्षन धर्म रेख को नाकी, लखि तेहिं निशिचर राज।

प्रगटि रूप लै भाग्यो सीता, भयभरि करति अवाज।
अरे दुष्ट रहु ठाढ़ अबहिं प्रभु, हर्षण हन लव बाज।

(१४५५)

सियहिं पकरि सो यान चढ़ायो।
हा रघुवीर करौं का अबला, दैत्य हर्‍यो दुख दायो।
दया सिन्धु करुणा वरुणालय, करहु उबार हमारो।
यहि विधि सिय विलपति जिमि कुररी, आरत नाद अपारो।
गृद्ध राज पहिचानि दौरि द्रुत, व्यथित कियो खल काहीं।
देखि प्रबल सो पंखहिं काट्यो, पर्‍यो गीध भुइ माहीं।
नभ पथ पहुँचि अशोक तरे सिय, राख्यो यतन कराई।
हर्षण चहत चन्द्र मुख निरखन, पै कबहुँक नहिं पाई।

(१४५६)

आवत इतहिं लखन लखि राम।
शंकित प्रभु मिलि बन्धुहिं बोले, कियो उचित नहिं काम।
मम मन सीता कुटिया नाहीं, सो कह खोर न माम।
पहुँचि आश्रम सियहिं न देखी, विकल भये घनश्याम।
इत उत गोदावरि के ढूँढ़े, लह्यो न खोज अकाम।
कामी इव भरि विरह विषादहि, तजे तुरत सो ठाम।
पूँछत चले लता तरु पक्षिन, कोउ देखे मम वाम।
मूर्छि भूलि सब देहहि गेहहि, कौन लखन–सिय नाम।
हर्षण बहु लछिमन समुझाये, आगे चले स्वधाम।

(१४५७)

वनहिं वन गवनत राम वियोगी।
आगे पर्‌यो गीध पति देख्यो, पंख कटे सुठि शोगी।
सुमिरत प्रभुपद रेख सुहावन, प्रीति हृदय अधिकाई।
भरि दृग नीर परशि निज करते, पूँछे राम सो गाई।
नाथ गती यह दसमुख कीन्हीं, सोइ तव प्रिया चोराई।
दक्षिण दिशि लैं सिया गयो सो, विलपत कुररि की नाई।
दरश लागि प्रभु जियो अबहिं लगि, चलन चहत अब प्राणा।
बचन सुनत करुणामय हर्षण, गीधहिं अंक में आना।

(१४५८)

कहा गुन वरणौं गीध तिहारे।
मोहि हित काह कियो नहिं पितुसम, हौ मोहि प्राण पियारे।
अस कहि अश्रु नीर नहवावत, धूर जटान सो झारे।
रक्त पोंछि निज चीर गृद्ध को, सुहलावत सुख सारे।
परसत पाणि हृदय महँ लेवत, रघुनन्दन सब वारे।
दीन दयाल देखि जन पीरा, अतिशय भये दुखारे।
जेहि गोदहिं विधि हरहूँ ललचत, योगिन दुर्लभ गारे।
ताही क्रोड जटायू विलसत, हर्षण दुख को दारे।

(१४५९)

रघुवर लीन्हे अङ्क जटाई।
कहत नयन भरिहौं तोहि पाये, पितहु मरण विसराई।

अभय रह्यो अबलौं यहि कानन, भयों आज असहाई।
तुम बिनु मोरे कौन इहाँ हा, अतिहिं अनाथ दिखाई।
मोरे जान जियैं जग कछु दिन, दिव्य देह अपनाई।
करैं कृतार्थ जगत के जीवन, हरिहर सुयश सुनाई।
मोहिं ते लहैं पुत्र सुख आपहु, मोहि कहँ पितु सुखदाई।
हर्ष गृद्ध प्रभु गोद वचन सुनि, लहत पर्श मुसकाई।

(१४६०)

मेरी मति अति हीन है स्वामी।
तिहरे अङ्क मरण सम सो प्रभु, तुलैं चार फल नामी।
देहु बताय कृपाकर मोहिं कहँ, हौ तुम अंतर यामी।
निरखि नयन सुनि श्रवण वचन तव, बैठि गोद अभिरामी।
परश पाय मै जो सुख पावौं, लहैं न योगि अकामी।
ऐसी मृत्यु छोड़ि जग जीवौं, मोहिं सम कौन हरामी।
सुनत जटायू वचन धन्य कहि, कहे चतुर नभ गामी।
निज सुकृतहिं ते लहि गति उत्तम, जावहु अब मम धामी।
हर्षण सुनत गीध तन त्यागो, धर हरि रूप ललामी।

(१४६१)

गीध गयो हरि धाम हर्ष हिय।
तेहिं की अंतिम क्रिया यथोचित, निज कर कीन्ही राम।
वर्षि सुमन सुर प्रभुहिं सराहत, कहत धन्य गुण ग्राम।

पितु ते अधिक ममत्व गीध पै, लीला ललित ललाम।
आमिष भोगहिं दियो देख निज, पतितन पावन नाम।
बहुरि चले सिय खोजत स्वामी, गिरि कंदर सब ठाम।
मग महँ मारि कबन्धहिं गति दै, दिये सुरन विश्राम।
शबरी गृह हर्षण पगु धारे, भक्तन पूरण काम।

(१४६२)

मुनियन ते पूँछत रघुराई।
मातु सरिस मोरी वह शबरी, वसति कहाँ सुखदाई।
तेहि देखे बिन चैन परै नहिं, करहिं कृपा द्विजराई।
बेगि बताय ठाँव सुख देवहिं, चित्त रहेउ अकुलाई।
राम वचन सुनि मग ऋषि बोले, आतिथ लेहिं अमाई।
लै पाद्यादि खड़े प्रभु हेतहिं, आवहिं कुटी सोहाई।
राम कहे यहि समय बसौं तहँ, जहँ मम शबरी माई।
अपने भक्ति वशहि मोहिं हर्षण, कीन्ही भिल्लिनि जाई।

(१४६३)

बता दो कोई शबरी को गृह कौन।
सियहिं भूलि भिल्लिन को खोजत, त्यागि मुनिन को भौन।
प्रीति रीति पहिचानत रघुवर, तिनहिं सरिस प्रभु सोई।
जाति-पाँति-गुण-धर्म बड़ाई, करि न सकै बस कोई।
शूद्रिहिं सुमिरि भरत तिन्ह नैना, निरखन चाह अथोर।
देखत द्विज सब अचरज मानहिं, भयो न भक्ति अँजोर।

विप्र सदन तजि के रघुनन्दन, जात शबरि के पासा।
हर्षण करहिं परस्पर चर्चा, भई बड़ी उप हाँसा।

(१४६४)

शबरी वर्षन ते गुण गाव।
गुरु के वचन प्रतीति किये हिय, अईहैं कुटि रघुराव।
कन्द मूल फल नित्य सँजोवति, जो जो तेहिं वन पाव।
रोजहिं रोज मगहिं को झारति, कंकड़ कांट दुराव।
चितवति पंथ अहर्निशि हरिको, आँख दसाय उराव।
जीह नाम जप वारि विलोचन, प्रेम पुलकि भरि भाव।
छन छन श्रद्धा प्रीति बढ़ै बहु, नहिं विश्वास घटाव।
आज नहीं तो काल अवशि प्रभु, अइहैं मोरे ठाँव।
यहि विधि बीतत जात दिनहिं दिन, हर्षण हिय हर्षाव।

(१४६५)

शबरी दिन उठि वन को जाती।
जेहि तरु फलहिं जानि अति मीठो, सोइ तोरति पुलकाती।
सोचति अहा याहि प्रभु खैहें, देखि जुड़ैहौं छाती।
प्रेम मगन भूलति कहुँ तोरिवो, सुमिरति प्रभु गुण पाँती।
कहुँ नृत्यति कहुँ गावन लागति, अँखियन अश्रु चुआती।
तैसहि चुनि चुनि पुष्पनि नित नित, गुथति हार हर्षाती।
भइ निशि अब प्रभु आज न अइहै, सोचि विरह रस राती।
कल की आस हिये करि हर्षण, जीवति प्रेम प्रमाती।

(१४६६)

झारि रही मग शबरी ऐसे।
निज नव जात शिशुहिं को जननी, विवश सोवावन चह भुँई जैसे।
सुमिरति चरण कमल कोमलता, उठति कसक तेहिं के उर भारी।
जनक लली कर लालित पद तल, कठिन भूमि कस चलत खरारी।
कहुँ स्तब्ध कबहुँ बनि मत्ता, प्रेम पगी कहुँ आँसु बहावै।
कहति राम रघुनाथ कबहिं हा, आय इतै मोहिं दरश दिखावै।
जो कोउ राही मिलत मगहिं तेहि, चर्चा करति राम रस छाई।
हर्षण प्रभु बिनु विरह विकलता, बैझुक कीन्ही सबहिं बुझाई।

(१४६७)

मोरे गृह अइहैं राम लला।
शबरी सोचि मगन मन ह्वै के, भूली सुधि बुधि देह कला।
दौरि दौरि देखति प्रभु मारग, इत उत फिरि फिरि विपिन थला।
कहुँ भीतर कहुँ बाहर जावति, छिन छिन नेह नवीन बला।
कहुँ ऊँचे चढ़ि दुरिहिं देखति, पुनि पुनि उतरति चढ़ति चला।
पत्तहु खटक सुनत चित समझति, आय गये का दुष्ट दला।
निकसि कुटी चहुँ दिशि अवलोकति, जबहिं न पेखति प्रेम पला।
हर्षण निमिषि कल्प सम बीतत, बिना लखे हरि चरण तला।

(१४६८)

आज शबरि का हर्ष हृदय भारी।
प्रातहिं झारि बुहारि पथहिं को, वन फल लाय विचारी।

चुनि चुनि पुष्प गुथी स्रग मुन्दर, जलहु धरी रुचिकारी।
लै लै कोमल तृण अरु पल्लव, आसन रची सम्हारी।
पुनि पुनि आय जाय मग निरखति, नयनन नीर पनारी।
लगत अबहि आवत प्रिय मोरे, सुख प्रद शकुन जनारी।
फरकत वाम अंग जनु मोकहुँ, कहत सँदेश सुखारी।
मन प्रसन्न दशदिशा प्रसन्ना, हर्षण को हिय आरी।

(१४६९)

आय गये रघुनाथ पियारे।
सफल गिनी गुरु आशिष शबरी, दृगन देखि नृप वारे।
दौरि गिरी प्रभु चरण प्रेम पगि, सुधि बुधि सकल बिसारे।
नयन नीर पग धोय बिठाई, राम लखन दृग तारे।
देखि देखि दोउ बन्धु ताहि को, तेहि कर बिकि सब सारे।
पाद्यादिक दै पूजि भिल्लनी, विपिन विभूति सहारे।
कन्द मूल फल सरस जिवाई, रुचि रुचि प्रेम पसारे।
हर्षण पद तल पकरि पलोटी, नेहनि नयन निहारे।

(१४७०)

भक्ति मूर्ति शबरी कर विनती।
नाथ अधम ते अधम अनार्या, कौनेहु वर्ण न गिनती।
तेहि पै नारि गवाँरि हीन मति, नहिं जानहुँ सत धरमा।
केहि विधि स्तुति करहुँ प्रभो मैं, ज्ञान न भक्ति न करमा।
दीन बन्धु प्रणतारति हारी, पतितन पावन करता।

करि विहेतु कृपा यहि नीचहिं, अपनावहिं दुख दरता।
शरण शरण मैं शरण तिहारी, प्रेम देहिं प्रभु अपना।
हर्षण अह मम नाशि विरोधिहिं, किंकरि करि मोंहि थपना।

(१४७१)

राम कहे सुनु शबरी मैया।
मानहु एक सम्बन्ध भक्ति को, और मनहिं नहि भैया।
जाति पाँति कुल-कर्म बड़प्पन, धन-बल गुण चतुराई।
भक्ति हीन जिमि जल बिनु वारिद, बृहद ताप दुख दाई।
प्रेम पूर्ण तैं मोहिं बिन दामहिं, लीन्ही अपुन बनाया।
तेरे नेह विवस इत आयो, तजि मुनि आतिथ भाया।
जनक सुता सुधि कहै जो जानसि, खोज करौं तेहि केरी।
हर्षण सुनि सो राघव बयननि, बोली प्रीति की प्रेरी।

(१४७२)

पंपासर तुम जाहु पियारे।
ऋष्य मूक सुग्रीव वसत है, सो सब कहिय स्वयं सब वारे।
सोइ सीताकर खोज कराइहिं, जहँ तहँ वानर भेज अपारे।
सो सब जानत अंतर-यामी, लीला करहिं जनन सुखसारे।
अस कहि शबरी प्रभुहिं पुलकि तन, नेह नीर भरि नयन निहारे।
योग अग्नि तजि तहाँ शरीरहिं, गइ हरिधाम सन्त जहँ जा रे।
योगि वृन्द दुर्लभ गति पाई, वर्षहिं सुमन सिद्ध सुर झारे।
बजत दुंदभी गगन जयति कहि, हर्षण हर्षहिं लोक जना रे।

(१४७३)

कीन्हे प्रभु शबरी सराध।
सुत सम करि अन्तेष्टि क्रिया को, सुख साने रघुवर अबाध।
अपने नीचउ भक्त आदरहिं, वारि अपन पौ सबहिं आप।
तेहिं सुख दुखहिं स्वसुख दुख जाने, देत मान अतिशय स्वथाप।
जन अपमान सहत नहिं नेकहुँ, धनि धनि अस प्रभु को स्वभाव।
सुर मुनि ब्रह्महु ते पुजवावहिं, स्वयं झुकावै सिर सुचाव।
जन रंजन भव भंजन पुनि पथ, विरही इव करि करि विषाद।
सीतहिं खोजत विलपत हर्षण, पंपासर पहुँचे सु पाद।

(१४७४)

मञ्जन करि पथ जल श्रमहिं विनाशी।
भे प्रसन्न निरखत जल-आशय, कहत बन्धु ते कछुक सुभाषी।
ताहि समय मुनि नारद आये, मिले भक्त भगवान प्रकाशी।
भक्ति-विराग-संत की रहनी, कहे सुने प्रभु-मुनी विकाशी।
प्रेम भक्ति लहि नारद गवने, आगे चले राम अविनाशी।
ऋष्य मूक पर्वत नियराये, लखि सुग्रीव भयहिं ते ग्रासी।
पवन तनय ते कहेव देखु भल, ये दोउ वीर तेज बल रासी।
विप्र रूप धरि जाय तहाँ तुम, जानहु ये को आवत पासी।
हर्षण भेजे बालि जो कोऊ, तजौं तुरत यहि गिरि कर आसी।

(१४७५)

विप्र रूप धरि अंजनि लाला, पवन सरिस जेहिं चाला।
आतुर गये बढ़ेव नव आनंद, देखतहिं दशरथ बाला।
देखि रूप तन तेज युगल को, लोचन बाहु विशाला।
प्रभु प्रेरित पहिचान हृदय ते, कहि जय प्रणतन पाला।
पूर हर्ष हनुमान प्रकट तनु, प्रभु पद पर्‌यो विहाला।
बरबस हरि उठाय हिय लाये, प्यारेउ नेह निहाला।
स्वामी-सेवक एक बने दोउ, देखत सुर तेहि काला।
वर्षि सुमन दुंदुभी बजावहि, कहे जयति सुख शाला।
हर्षण सो रस वाक विषय नहिं, जेहि रस रसे रसाला।

(१४७६)

हरि-हनुमान मिलनि नीकी नीकी।
वर्षत दोउ दृग वारि परस्पर, स्वकहि दिये सब बीकी बीकी।
राम उरहिं छपकाय कपिहिं कहँ, प्यारत सुधि गै धी की धी की।
पवन तनय कटि कहुँ पद पकरत, प्रेम पग्यो प्रिय प्री की प्री की।
जड़ चेतन सब बने विभोरी, वर्ष सुमन सुर ली की ली की।
ह्वै प्रकृतस्थ कथा प्रभु वर्णे, तिया रही सम जी की जी की।
भयो हरण तेहि को वन खोजत, विपति वरी मोहि फीकी फीकी।
हर्षण पवन तनय दुख पागे, कहीं बात निज ही की ही की।

(१४७७)

नाथ शैल सुग्रीव वसै।
त्रिकरण दीन दास सो तिहरो, ताहि अभय करि बाँह बसै।
मैत्र भाव अपनाय कपी कहँ, शान्ति सदन महँ दोउ गठै।
सो सीता कर खोज कराइहि, कोटि कपिन जहँ तहाँ पठै।
जानि राम रूख पीठ चढ़ाये, पवन तनय दोउ बन्धु भले।
गे लिवाय कपि पति पहँ द्रुतहीं, देखतहिं सोउ पर चरण तले।
आसनादि दै पूजि प्रभुहिं कहँ, पायो सुख नहिं वाणि भनै।
हनुमत दोउ की प्रीति जोरायो, हर्षण पावक साखि बनै।

(१४७८)

प्रिया मोरी दैत्य हरेव कोउ आय।
खोजत ताहि मित्र भल पाई, बिगरि बात बन जाय।
सुनि सुग्रीव वचन निज प्रभु के, कछु पट भूषण लाय।
कहेउ सचिव सह बैठ गिरिहि पर, एक बार रघुराय।
नभ पथ जात विलपि कहि रघुवर, फेक्यो कोउ पट काय।
देखि राम पहिचान के रोये, सिया कहत अकुलाय।
कह सुकंठ करिहौं सेवकाई, सिय को खोज कराय।
सुनत राम धरि धीरहिं बोले, हर्ष सखा धनि भाव।

(१४७९)

बालि बैर जेहि भाँति भयो।
सो सब कहि सुग्रीव सुनायो, वसत वनहिं कछु सचिव लयो।

सुनतहिं जन दुख दीन दयाला, फरकत भुज कह प्रणहिं कयो।
एकहिं बाण ते बालिहिं मरिहौं, विधि हर शरण न उबर पयो।
कपि प्रतीत के हेतु राम तहँ, दुंदभि अस्थि अंगूठ ढयो।
सप्त ताल एक शरहिं गिराये, आनँद कपिहिं अपार जयो।
भेजे प्रभु सुग्रीव बालि पहँ, युद्ध करत जब थकित भयो।
तरु छिपि देखि ताकि शर मारे, बालि गिर्‌यो भुँइ प्राण गयो।
हर्षण निकट राम चलि आये, देखि नयन सो नेह नयो।

(१४८०)

पठयो अपने धाम कृपानिधि।
बालि भयो बहुतै बड़भागी, निरखि नयन श्री राम।
तज्यो प्राण मन निर्मल करिके, लाध्यो गती ललाम।
विलपत तारहिं ज्ञान दिये प्रभु, अंगद बाहुहि थाम।
बन्धु क्रिया सुग्रीवहु करिके, प्रभु पद कियो प्रणाम।
लखनहिं भेजि तुरत किष्किन्धा, हनुमदादि कपि ग्राम।
नृप पद दिये सकंठहि रघुवर, पूर्‌यो तेहिं मन काम।
अंगद कहँ युवराज बनाये, दीनोद्धारक नाम।
हर्षण आपु प्रवर्षण गिरि पै, बसे अनुज सह राम।

(१४८१)

चातुर्मास किये तेहिं शैला।
वर्षा विगत शरद ऋतु देखी, सिय बिनु प्रभु विरहैला।
कहे बन्धु ते काह करौं मैं, कपि पति हूँ विसराये।

तेहि डेराय द्रुत आनहु लक्ष्मण, करहुँ यत्न मन लाये।
सुनत शीघ्र सो पहुँचि पुरी महँ, भय दै पुनि अपनाये।
चले लिवाय सुकण्ठहिं प्रभु पहँ, पहुँचि के शीश नवाये।
हनुमत आगे विनय के रामहिं, निज अपराध छमाये।
हर्षण प्रथम बोलाये वानर, अगनित आतुर आये।

(१४८२)

कपि पति कोटिक कपिन पठाये हैं।
सीतान्वेषण हेतु चले सब, प्रभु पद शीश नवाये हैं।
हनुमत अंगद सह नल नीलहु, जामवंत चित चाये हैं।
आयसु लहि सुग्रीव की सिगरे, वानर दक्षिण धाये हैं।
पवन तनय गवनत लखि रघुवर, अपने पास बोलाये हैं।
मुदरी दै संदेश कह्यो पुनि, विरह व्यथा को गाये हैं।
सुनि सिरनाय आशिषा पाई, भाग गुने हरि दायें हैं।
हर्षण हर्ष हृदय हनुमाना, चल्यो राम उर ध्याये हैं।

(१४८३)

पवन तनय लै भालू-बन्दर।
खोजत दक्षिण जात चले भुंइ, बीहड़ बन गिरि कन्दर।
विन्ध्यादिक सब पर्वत ढूँढत, पहुँचे उदधि किनारे।
मास गयो सिय सुधिहि न पाये, शोकित बात उचारे।
गिरि कन्दरा सुन्यो सम्पाती, कह्यो मिल्यो आहारा।
डरपे कीश जटायू धनि कह, सो सुनि प्रेम पसारा।

सीतहिं कह्यो बसै वह लंका, तरु अशोक के नीचे।
अमित दृष्टि देखौ मैं इत ते, गवनहु तहँ सुख सींचे।
इतना कहत पंख दोउ जामें, है गो गीध प्रसन्ना।
हर्षण दियो तिलाञ्जलि बन्धुहिं, सिन्धुवारि बिनु खिन्ना।

(१४८४)

बैठे करत बिचार कपी सब।
सिन्धु पार को जाइ लंक कहँ, बिना विघ्न बुधिवार।
पार जाय सब संशय कीन्हे, जामवन्त सुविचार।
कह्यो कहा चुप साधि रह्यो तुम, पवन सरिस बलवार।
बुधि विवेक बल विरति महोदधि, पवन तनय वरियार।
कौन कठिन जग काज अहै जेहिं, करि न सकहु हिय हार।
प्रगटेउ प्रभु कैंकर्य करन हित, और न काम तिहार।
हर्षण सोइ अवसर अब आयो, सहज स्वरूप सम्हार।

(१४८५)

सोहाय गयो रे कपि तन पुलके पै।
ऋक्ष वचन सुनि शैल समाना, कनक वरण तन तेज निधाना,
पवन तनय दर्शाय गयो रे।
सिंह नाद करि पुनि पुनि वीरा, खेलहिं नाधउँ सिन्धु गंभीरा।
रावण मारि मैं आय गयो रे।
जामवन्त कह सुनु मति वाना, केवल सिय सुधि लै इत आना।
सुनत कपिहु हर्षाय गयो रे।

सबहिं प्रणमि निज प्रभु कह सुमिरी, तरकि हुमकि चल नभ पथ निडरी।
गिर वर मही समाय गयो रे।
वायु वेग तरू-सुमन अपारा, टूटि उड़हि तेहि पीठ सहारा,
मनहु मित्र पछिआय गयो रे।
देव-सिद्ध गंधर्व औ नागा, देख बलहिं सब विस्मय पागा,
जय जय कहि यश गाय गयो रे।
प्रेरित जलधि उठ्यो मैनाका, करु विश्राम कपिहिं कहि थाका,
हर्ष परसि सो धाय गयो रे।

(१४८६)

हनुमत हर्षि गगन पथ जात।
विघ्न करी अहि अम्ब के आनन, प्रविशि निकसि दरशात।
वर्षे सुमन सुरन जय उचरत, बुधि बल अमितहिं ज्ञात।
निशिचर सिन्धु सिंहिका कपि की, छाँह पकरि गति घात।
जानि मर्म मुख बैठि मारि तेहिं, उड़े नभहिं पुलकात।
बिनु श्रम उदधि पार गिरि चढ़िके, लखे लंक जस भात।
मसक सरिस बपु बनि प्रभु सुमिरी, किय प्रवेश गढ़ रात।
तहाँ लंकिनी निशिचरि एकी, रोकी मग भय दात।
मुठिका मारि जीति तेहि अनुमति, चलेहर्ष सुत वात।

(१४८७)

करि प्रवेश निशि लंकहिं सोधे।
तिल भर भूमि न रही केहु मन्दिर, जेहि न लखे कपि वीर प्रबोधे।

शोक विवश परिताप हृदय सो, बार बार प्रभु सुमिरि विभोरे।
प्रेरित उर उद्यान अशोकहिं, जाइ लखे सिय दुख में बोरे।
परम दुखी सोउ भये धीर धरि, तरुवर पल्लव बीच छिपायो।
ताही समय दशानन आई, सियहिं दाम शम दंड दिखायो।
जनक लली मुख फेरि के बोली, रे खल अधम अनार्य अभागे।
जीभ गिरै नहिं लाज न हर्षण, सिंह के भाग सियारहु मागे।

(१४८८)

सुनि सिय वचननि जलि गो दशानन।
मारन दौरत रोकि मँदोदरि, कर गहि कही लखहु मम आनन।
करिहौ काह मानुषी सीतहिं, देवति ताप जो नारि अकामा।
धरि धीरज निशिचरी बोलाई, सो समुझाय कह्यो मति बामा।
त्रास देइ सीतहिं मम बस करि, करहु काज हमरो मन चाहा।
अस कहि गयो दुष्ट निज सदनहिं, सियहिं दुष्टिनी दुखवहिं दाहा।
देखि देखि हनुमान दुखी ह्वै, रहत मींजि निज हाथा।
निशिचरि-चित्र वधन प्रण कीन्हो, हर्षण बल रघुनाथा।

(१४८९)

भरी विरह पिय के सिय रोई।
मास दिवस बीते मोहि दशमुख, मारिहिहौं जिय जोई।
बिन प्रभु दर्शन विलपत प्राणा, छुटिहैं खल कर हा हा दैव।
शोकित सिया मुरछि महि माहीं, रटति राम दृग नीरहिं लैव।
कहुँ उठि करति प्रयत्न मृत्यु को, निष्फल होय प्रलापी।

राम बिना तनि जियव न भावत, तन थर थर थर काँपी।
बिनु संबोध मिले सिय छनमहँ, मरी समुझि कपिराया।
प्रभु मुदरी दिय डार लखी सिय, विस्मय हर्ष समाया।

(१४९०)

सियजू प्रभु मुदरी पहिचान लई।
माया ते अस रची न जावै, त्रिकरण ताहि प्रतीति भई।
राम नाम अंकित दृग देखी, नयन शीश हिय लाय लई।
प्रेम वारि अन्हवाय करहिं लै, चुम्बति विरह विहाल भई।
राम कुशल पूँछति धरि धीरज, हर्षि मुद्रिका उतर दई।
तेहिं अवसर बनि कपि सत साखी, राम कथा कहँ उचरि चई।
सुनत जानकी हर्ष हृदय भरि, तेहि निरखन नव प्रीति कई।
समुझि समय प्रगटे सुत शंकर, चरण वन्दि कर जोरि लई।
जेहि प्रकार मैं भेंट प्रभुहि सन, सिय के कहे बताय दई।

(१४९१)

कहु कपि पिय तन लक्षण लोने।
रूप-शील-गुण वरणि स्वभावहि, जरनि हरहु सुख बोने।
केसरि सुवन सुनत सब भाषे, जस प्रभु अंग अहोने।
लखनहु की पहिचानि कही पुनि, जन्म कर्म निज योने।
रामदास हनुमान नाम सुनि, हर्ष सिया भइ मौने।
बहुरि धीर धरि कही कबहुँ हरि, सुमिरत मोंहि सुख भौने।
तब वियोग रघुवर दिन राती, विलप विरह दिन खोने।